हे बेशर्मी तेरा आसरा !

दिल्ली हाईकोर्ट द्वारा 2009 में जिस समय समलैंगिक संबंधों को वैध करार देने संबंधी एक याचिका पर निर्णय सुनाते हुए इसे वैध ठहराया था उस समय भी देश में यह मुद्दा राष्ट्रीय स्तर पर चर्चा का विषय बना था। गौरतलब है कि 2001 में समलैंगिक संबंधों को वैध ठहराने हेतु ऐसे संबंधों की पैरवी व समर्थन करने वाले कुछ संगठनों ने एक याचिका दायर की थी। इस पर दिल्ली हाईकोर्ट ने अपना निर्णय इनके पक्ष में सुनाया था। उस समय अदालत ने कहा था कि 'अधिकार दिए नहीं जाते बल्कि मात्र इनकी पुष्टि की जाती है अर्थात् मान-स मान का अधिकार,हमारा हिस्सा है और इस दुनिया की किसी अदालत के पास हमारा हक छीनने का अधिकार नहीं हैं।' और अपने इसी आदेश के साथ दिल्ली उच्च न्यायालय ने ऐसे संबंधों को कानूनी मान्यता दे दी थी। परंतु कई धार्मिक संगठनों व अन्य सामाजिक संगठनों ने हाईकोर्ट के इस फैसले का विरोध करते हुए सर्वोच्च न्यायालय में उच्च न्यायालय के फैसले को चुनौती दी। परणिामस्वरूप पिछले दिनों सर्वोच्च न्यायालय ने दिल्ली उच्च न्यायालय के 2009 के निर्णय को रद्द करते हुए भारतीय दंड संहिता की धारा 377 को पुन : वैध ठहराते हुए यह आदेश जारी किया कि व्यस्क समलैंगिकों के मध्य सहमति से बनाए गए यौन संबंध गैरकानूनी हैं।

दरअसल, अप्राकृतिक रूप से किन्हीं दो समलैंगिकों के मध्य बनाए जाने वाले यौन संबंध के विरुद्ध बनाया गया यह कानून 153 वर्ष पुराना हैं। इस कानून के तहत यदि कोई भी दो समलैंगिक व्यक्ति सहमति से तथा स्वेच्छा से किसी भी स्थान पर अप्राकृतिक तरीके से यौन संबंध स्थापित करते हैं तो कानून की नज़र में यह एक अपराध होगा। और ऐसा अपराध करने वालों को उम्र कैद की सज़ा तक हो सकती है। वास्तव में यह कानून छोटे बच्चों को अप्राकृतिक यौन हिंसा से बचाने हेतु बनाया गया था। परंतु बाद में किन्हीं दो समलैंगिकों के मध्य सहमति से स्थापित किया गया यौन संबंध भी इसी कानून की परिधि में आ गया।

एक बार फिर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा धारा 377 को बरकरार रखने व इसे उचित ठहराने के फैसले के बाद मानवाधिकार के तथाकथित पैरोकार सड़कों पर उतरते दिखाई दे रहे हैं तथा सुप्रीम कोर्ट के निर्णय की अत्यंत घटिया व निम्र स्तर के शब्दों में आलोचना कर रहे हैं। सर्वोच्च न्यायलय के इस फैसले की निंदा ऐसे शब्दों में की जा रही है जिसे अदालत की मानहानि तक कहा जा सकता है।

इस प्रकार के अप्राकृतिक संबंधों को वैध ठहराने की पैरवी करने वालों का मत है कि चंूकि दुनिया के अधिकांश देशों में मानवाधिकारों को संरक्षण दिए जाने के तहत ऐसे संबंधों को कानूनी वैधता प्रदान की जा रही है। लिहाज़ा भारत में भी ऐसे संबंधों को कानूनी दर्जा प्राप्त होना चाहिए। इस तर्क के पक्ष में तमाम तथाकथित बुद्धिजीवी व मानवाधिकार कार्यकर्ता खड़े दिखाई दे रहे हैं। इस प्रकरण में सबसे मज़ेदार व दिलचस्प बात यह है कि भारत के जिन प्रमुख धर्मों के धर्मगुरू आपस में धार्मिक मुद्दों को लेकर लड़ते दिखाई देते थे वे सभी समलैंगिकता के विरोध में एक-दूसरे से गलबहियां करते दिखाई दे रहे हैं। और एक स्वर में समलैंगिक संबंध बनाने जैसी व्यवस्था का प्रबल विरोध करते नज़र आ रहे हैं।

ऐसे में इस विषय पर बहस होना लाज़मी है कि आख़िर मानावाधिकार की सीमाएं क्या हों ? इन सीमाओं

को कोई व्यक्ति अपने लिए स्वयं निर्धारित करेगा या समाज अथवा कानून को किसी दूसरे व्यक्ति के अधिकारों की सीमाएं निर्धारित करने का अधिकार है ? मानवाधिकार के जो पैरोकार आज समलैंगिक संबंध स्वेच्छा से बनाए जाने को अपने अधिकारों के दायरे में शामिल कर रहे हैं आख़िर इस बात की क्या गारंटी है कि भविष्य में मानवाधिकार के कोई दूसरे पैरोकार मनुष्य व पशुओं के मध्य यौन संबंध स्थापित करने को भी अपने अधिकार क्षेत्र की बात नहीं कहेंगे ? अथवा मानवाधिकार के नाम पर पवित्र पारिवारिक रिश्तों को भी कलंकित करने की मांग नहीं खड़ी करेंगे ?

आख़िरकार प्रकृति जोकि सृष्टि की रचनाकार है उसके द्वारा भी कुछ नियम निर्धारित किए गए हैं। पुरुष-स्त्री संबंध के माध्यम से सृष्टि की रचना होते रहना इस नियम की एक सबसे महत्वपूर्ण कड़ी है। यदि अप्राकृतिक यौन संबंध की प्रकृति पर नज़र में कोई ज़रा सी गुंजाईश होती तो पशु भी इस प्रकार के समलैंगिक संबंध स्थापित करते देखे जा सकते थे। पंरतु बड़े ही आश्चर्य एवं ग्लानि की बात है स्वयं को सबसे बुद्धिमान समझने वाला तथा अपने अधिकारों व कर्तव्यों की बात पूरी सजगता के साथ करने वाला मनुष्य ही समलैंगिक संबंधों जैसे अप्राकृतिक व अनैतिक रिश्तों की पैरवी करने लगा है। यदि यह कहा जाए कि मानवाधिकारों की आड़ लेकर यह वर्ग केवल अपनी वासनापूर्ति को कानूनी शक्ल देना चाहता है तो यह कहना कतई गलत नहीं होगा। ऐसे अप्राकृतिक यौन संबंधों के पक्ष में दिए जाने वाले सारे तर्क भी फुज़ूल के तर्क दिखाई देते हैं। उदाहरण के तौर पर ऐसे संबंधों के पक्षधर यह कह रहे हैं कि ऐसे संबंध सदियों से बनते चले आ रहे हैं लिहाज़ा आगे भी इन्हें वैधता मिलनी चाहिए। आख़िर यह कैसा तर्क है ? कोई बुराई यदि सदियों से चली भी आ रही है तो उसे रोका जाना चाहिए अथवा उस बुराई निरंतरता प्रदान की जानी चाहिए ? एक तर्क यह भी दिया जा रहा है कि दुनिया के कई देशों में ऐसे संबंधों को मान्यता प्राप्त है। यह तर्क भी इसलिए गलत है कि दुनिया के लगभग सभी देशों की अपनी अलग संस्कृति,स यता तथा सामाजिक व धार्मिक सीमाएं व मान्यताएं हैं। हम जिस देश में रहते हैं वहां ऐसे संबंधों को न तो समाज मान्यता देता है न ही कानून। ऐसे संबंध रखने वालों को अच्छी नज़र से नहीं देखा जाता।

दूसरे देशों की भारत से तुलना कहां की जा सकती है ? कई देशों में पूर्णरूप से नग्न होकर परेड व जुलूस निकाले जाते हैं कई देशों में पोर्नग्राफी आम बात है। पोर्न िफल्मों में समलैंगिक संबंध बनाने वाले कलाकारों को विशिष्ट लोगों की श्रेणी में गिना जाता है। पूर्ण नग्न अवस्था में इक_े होकर पुरुष व महिलाएं सामूहिक चित्र खिंचवाते हैं। हम यह नहीं कहते कि वे लोग कुछ गलत,बुरा अथवा अनैतिक कार्य करते हैं।

यह सब बातें उनकी स यता,संस्कृति तथा समाज का हिस्सा हो सकती हैं परंतु भारतीय उपमहाद्वीप में ऐसी बातों की कोई गुंजाईश नहीं है। पिछले दिनों पश्चिमी देशों में नंगे रहने न रहने को लेकर महिलाओं द्वारा नग्न अवस्था में एक प्रदर्शन पादरियों के सामने जाकर किया गया। जिसमें नग्न लड़कियों द्वारा यह नारे लगाए गए कि 'मेरा शरीर मेरा कानूनÓ ज़रा सोचिए भारत वर्ष जैसे देश में जहां लड़कियों को अब भी उच्च शिक्षा हेतु कॉलेज भेजने से अभिभावक कतराते हों, लड़कियों को सूरज डूबने के बाद घर में रहने की हिदायत दी जाती हो, लड़कियों के अकेले कहीं आने-जाने पर पाबंदी लगाई जाती हो क्या ऐसे देश में लड़कियां अपने अधिकारों के नाम पर नग्न अवस्था में घूमने की मांग कर सकती हैं ? और क्या मानवाधिकार के पैरोकारों को भी उनके सुर में अपना सुर मिलाना चाहिए ?

इस विषय पर विभिन्न धर्मों के धर्मगुरु अथवा धार्मिक संगठनों द्वारा समलैंगिक संबंधों का विरोध करने से मुद्दा और अधिक पेचीदा क्यों न बन गया हो परंतु वास्तव में यह विषय धर्म व अधर्म से जुड़ा होने के बजाए मानवीय मर्यादाओं तथा सामाजिक नैतिकता के साथ-साथ प्रकृति द्वारा निर्धारित संबंधों से जुड़ा मामला है। इसमें न तो किसी धर्मगुरु द्वारा धार्मिक दृष्टिकोण से दखलअंदाज़ी करने की ज़रूरत है न ही इस विषय को रूढ़ीवाद या उदारवाद से जोडऩे की कोई आवश्यकता है। यह विषय पूरी तरह से प्रकृति,मर्यादा व नैतिकता से जुड़ा विषय है। इसकी रक्षा करना सबसे बड़ा मानवाधिकार होना चाहिए न कि अपनी तुच्छ अप्राकृतिक वासनापूर्ति को ही मानवाधिकार के तथाकथित पैरोकार सर्वोच्च समझें। इन्हें केवल अपनी अप्राकृतिक वासनापूर्ति के बारे में ही नहीं सोचना चाहिए बल्कि यह भी ध्यान रखना चाहिए कि हमारे देश के किशोरों पर आख़िर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा ?

इस विषय पर एक बात और भी काबिल-ए-गौर है कि टेलीविज़न के अधिकांश खबरिया चैनल इस विषय को और अधिक मसालेदार बना कर तथा दोनों पक्षों में चोंचें लड़वाकर समाज में गलत विषय पर हो रही गलत बहस को प्रोत्साहित कर रहे हैं। अपनी टीआरपी बढ़ाने के चक्कर में ऐसी बहसों को अपने मु य कार्यक्रमों का हिस्सा बनाना मीडिया नीति के भी विरुद्ध है तथा सामाजिक दृष्टिकोण से ी गलत है। क्या मीडिया तो क्या समलैंगिक संबंधों के पैरोकार व मानवाधिकारों की बातें करने वाले लोग तथा मानवाधिकार संगठन सभी को मानवीय अधिकारों के साथ-साथ इस विषय को प्रकृति द्वारा निर्धारित नियम,मर्यादा तथा नैतिकता के आईने में भी देखना चाहिए।

निर्मल रानी

1618, महावीर नगर
अंबाला शहर,हरियाणा।

फोन-0171-2535628

.